International Journal of Leading Research Publication (IJLRP)

E-ISSN: 2582-8010 ● Website: www.ijlrp.com ● Email: editor@ijlrp.com

वैश्वीकरण और भारतीय पारिवारिक संरचना में परिवर्तन : संयुक्त परिवार से एकल परिवार तक का समाजशास्त्रीय विश्लेषण

किरण पड़िहार

सहायक आचार्य (संगीत – वाद्य सितार)
राजकीय मीरा कन्या महाविद्यालय, उदयपुर

सार
वैश्वीकरण ने भारतीय समाज की सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक संरचनाओं को गहराई से प्रभावित किया है, जिनमें पारिवारिक व्यवस्था सबसे महत्वपूर्ण सामाजिक संस्था के रूप में उभरकर सामने आती है। पारंपरिक भारतीय संयुक्त परिवार व्यवस्था, जो सामूहिकता, पारस्परिक सहयोग, सांस्कृतिक मूल्यों एवं भावनात्मक एकता पर आधारित थी, वर्तमान समय में तीव्र परिवर्तन के दौर से गुजर रही है। औद्योगीकरण, शहरीकरण, शिक्षा का प्रसार, महिलाओं की आर्थिक भागीदारी, रोजगार हेतु प्रवासन तथा उपभोक्तावादी संस्कृति के प्रभाव ने एकल परिवार व्यवस्था को बढ़ावा दिया है। यह शोध लेख वैश्वीकरण के संदर्भ में भारतीय पारिवारिक संरचना में आए परिवर्तनों का समाजशास्त्रीय विश्लेषण प्रस्तुत करता है। अध्ययन में संयुक्त परिवार से एकल परिवार की ओर संक्रमण के सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक कारणों का विवेचन किया जाएगा। साथ ही, पारिवारिक संबंधों, पीढ़ीगत मूल्यों, बुजुर्गों की स्थिति, बच्चों के समाजीकरण तथा महिलाओं की भूमिका में आए परिवर्तनों का भी अध्ययन किया जाएगा। यह शोध यह समझने का प्रयास करता है कि वैश्वीकरण ने भारतीय परिवार संस्था को किस प्रकार पुनर्परिभाषित किया है तथा इसके परिणामस्वरूप भारतीय समाज में कौन-कौन से नए सामाजिक आयाम विकसित हुए हैं।

Keywords: वैश्वीकरण, भारतीय पारिवारिक संरचना, संयुक्त परिवार, सामाजिक परिवर्तन, शहरीकरण, आधुनिकीकरण, औद्योगीकरण

1. प्रस्तावना: वैश्वीकरण और भारतीय समाज

वैश्वीकरण समकालीन विश्व की एक ऐसी बहुआयामी प्रक्रिया है जिसने आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक तथा राजनीतिक स्तर पर विश्व समाज को गहराई से प्रभावित किया है। सामान्यतः वैश्वीकरण का आशय विश्व के विभिन्न देशों, समाजों और संस्कृतियों के मध्य बढ़ती पारस्परिक निर्भरता, संपर्क तथा आदान-प्रदान से है। यह केवल आर्थिक उदारीकरण तक सीमित नहीं है, बल्कि संचार क्रांति, तकनीकी विकास, सांस्कृतिक प्रसार, उपभोक्तावाद तथा जीवनशैली में आए परिवर्तनों से भी संबंधित है। समाजशास्त्री एंथनी गिडेन्स के अनुसार वैश्वीकरण वह प्रक्रिया है जिसके माध्यम से विश्वव्यापी सामाजिक संबंध इतने सघन हो जाते हैं कि दूरस्थ घटनाएँ भी स्थानीय जीवन को प्रभावित करने लगती हैं (गिडेन्स, 1990)। इसी प्रकार रोलैंड रॉबर्टसन ने वैश्वीकरण को "विश्व के संकुचन तथा वैश्विक चेतना के विस्तार" के रूप में परिभाषित किया है (रॉबर्टसन, 1992)। भारत में 1991 की नई आर्थिक नीति के बाद वैश्वीकरण की प्रक्रिया ने तीव्र गति प्राप्त की, जिसके परिणामस्वरूप भारतीय समाज की पारंपरिक संस्थाओं में व्यापक परिवर्तन देखने को मिले।

भारतीय समाज पर वैश्वीकरण का प्रभाव बहुआयामी रहा है। आर्थिक उदारीकरण और निजीकरण ने रोजगार, शिक्षा, संचार और उपभोग के नए अवसर प्रदान किए, वहीं दूसरी ओर पारंपरिक सामाजिक संरचनाओं और सांस्कृतिक मूल्यों को भी चुनौती दी। औद्योगीकरण और शहरीकरण के विस्तार ने ग्रामीण आबादी को शहरों की ओर आकर्षित किया, जिससे जीवनशैली, सामाजिक संबंधों और पारिवारिक संरचना में महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए। आधुनिक शिक्षा,

सूचना प्रौद्योगिकी तथा डिजिटल मीडिया के प्रसार ने व्यक्तिवादी चेतना को बढ़ावा दिया है, जिसके कारण सामूहिक जीवन की अपेक्षा व्यक्तिगत स्वतंत्रता और निजी आकांक्षाओं को अधिक महत्व मिलने लगा है। भारतीय समाजशास्त्री योगेन्द्र सिंह का मत है कि भारतीय समाज में आधुनिकता और परंपरा का सहअस्तित्व देखने को मिलता है, जहाँ वैश्वीकरण ने सामाजिक संस्थाओं को पुनर्गठित करने की प्रक्रिया को तीव्र किया है (सिंह, 1973)।

परिवार भारतीय समाज की सबसे प्राचीन और महत्वपूर्ण सामाजिक संस्था है। यह केवल जैविक या आर्थिक इकाई नहीं, बल्कि सामाजिक नियंत्रण, सांस्कृतिक हस्तांतरण, समाजीकरण तथा भावनात्मक सुरक्षा का प्रमुख माध्यम भी है। समाजशास्त्रीय दृष्टि से परिवार वह संस्था है जिसके माध्यम से व्यक्ति सामाजिक मूल्यों, परंपराओं और व्यवहारों को सीखता है। टैल्कॉट पार्सन्स ने परिवार को समाज की आधारभूत इकाई मानते हुए इसे समाजीकरण और भावनात्मक स्थिरता का प्रमुख केंद्र बताया है (पार्सन्स एवं बेल्स, 1955)। भारतीय संदर्भ में परिवार का स्वरूप लंबे समय तक संयुक्त परिवार व्यवस्था पर आधारित रहा, जिसमें अनेक पीढ़ियाँ एक साथ निवास करती थीं और आर्थिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक उत्तरदायित्व सामूहिक रूप से निभाए जाते थे।

भारतीय संयुक्त परिवार व्यवस्था की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि अत्यंत समृद्ध रही है। प्राचीन भारतीय समाज में संयुक्त परिवार को सामाजिक संगठन की आदर्श इकाई माना जाता था। कृषि आधारित अर्थव्यवस्था, सामूहिक उत्पादन प्रणाली, पारिवारिक श्रम विभाजन तथा सांस्कृतिक परंपराओं ने संयुक्त परिवार व्यवस्था को स्थायित्व प्रदान किया। इस व्यवस्था में परिवार के सभी सदस्य एक ही छत के नीचे रहते थे और संसाधनों का सामूहिक उपयोग करते थे। भारतीय मानवशास्त्री इरावती कर्वे ने भारतीय संयुक्त परिवार को रक्त संबंधों, साझा संपत्ति तथा सामूहिक उत्तरदायित्व पर आधारित संस्था माना है (कर्वे, 1961)। इसी प्रकार ए. एम. शाह ने अपने अध्ययन में स्पष्ट किया कि भारतीय परिवार व्यवस्था समय के साथ निरंतर परिवर्तनशील रही है और सामाजिक-आर्थिक परिस्थितियों के अनुसार उसका स्वरूप बदलता रहा है (शाह, 1998)। वर्तमान समय में वैश्वीकरण के प्रभाव ने भारतीय पारिवारिक संरचना को गहराई से प्रभावित किया है। संयुक्त परिवारों का विघटन तथा एकल परिवारों का बढ़ता प्रचलन भारतीय समाज में उभरते सामाजिक परिवर्तन का महत्वपूर्ण संकेत है। रोजगार हेतु प्रवासन, सीमित आवास, महिलाओं की आर्थिक स्वतंत्रता, शिक्षा का प्रसार तथा उपभोक्तावादी संस्कृति ने पारिवारिक संबंधों की पारंपरिक अवधारणाओं को परिवर्तित किया है। परिणामस्वरूप पारिवारिक भूमिकाओं, पीढ़ीगत संबंधों, बुजुर्गों की स्थिति तथा बच्चों के समाजीकरण की प्रक्रिया में उल्लेखनीय परिवर्तन दिखाई देते हैं। इस संदर्भ में प्रस्तुत शोध विषय अत्यंत प्रासंगिक है क्योंकि यह वैश्वीकरण और भारतीय परिवार संस्था के मध्य अंतर्संबंधों का समाजशास्त्रीय विश्लेषण करने का प्रयास करता है।

2. भारतीय संयुक्त परिवार व्यवस्था: संरचना एवं विशेषताएँ

भारतीय समाज में संयुक्त परिवार व्यवस्था प्राचीन काल से ही सामाजिक संगठन की एक महत्वपूर्ण इकाई रही है। यह केवल एक निवास व्यवस्था नहीं, बल्कि भारतीय संस्कृति, परंपरा, सामाजिक मूल्यों तथा सामूहिक जीवन पद्धति का आधार मानी जाती रही है। संयुक्त परिवार का सामान्य अर्थ ऐसे परिवार से है जिसमें एक से अधिक पीढ़ियों के सदस्य—जैसे दादा-दादी, माता-पिता, चाचा-चाची, भाई-बहन एवं अन्य रिश्तेदार—एक साथ निवास करते हैं तथा आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक उत्तरदायित्वों का निर्वहन सामूहिक रूप से करते हैं। समाजशास्त्री इरावती कर्वे के अनुसार संयुक्त परिवार वह समूह है जिसमें सामान्यतः एक ही छत के नीचे रहने वाले सदस्य समान रसोई, साझा संपत्ति और पारिवारिक उत्तरदायित्वों से जुड़े होते हैं (कर्वे, 1961)। भारतीय सामाजिक संरचना में यह व्यवस्था पारस्परिक सहयोग, सामूहिकता तथा पारिवारिक एकता का प्रतीक मानी जाती रही है।

पारंपरिक भारतीय संयुक्त परिवार की संरचना मुख्यतः पितृसत्तात्मक एवं पितृवंशीय व्यवस्था पर आधारित रही है। परिवार का नेतृत्व सामान्यतः सबसे वृद्ध पुरुष सदस्य के हाथों में होता था, जिसे परिवार का मुखिया माना जाता था। वही परिवार के आर्थिक, सामाजिक एवं धार्मिक निर्णयों का संचालन करता था। परिवार के सभी सदस्य उसकी आज्ञा एवं अनुशासन का पालन करते थे। इस व्यवस्था में विवाह के बाद पुत्र परिवार के साथ रहते थे, जबकि पुत्रियाँ विवाह के उपरांत अपने पति के परिवार में चली जाती थीं। कृषि आधारित भारतीय अर्थव्यवस्था ने संयुक्त परिवार व्यवस्था को विशेष स्थायित्व प्रदान किया, क्योंकि कृषि कार्यों में अधिक श्रमशक्ति की आवश्यकता होती थी और संयुक्त परिवार इस आवश्यकता को पूरा करने में सक्षम था।

संयुक्त परिवार व्यवस्था की सबसे प्रमुख विशेषता सामूहिकता एवं पारस्परिक सहयोग की भावना है। परिवार के सभी सदस्य एक-दूसरे के सुख-दुःख में सहभागी होते हैं तथा सामाजिक एवं आर्थिक उत्तरदायित्वों को मिलकर निभाते हैं। व्यक्तिगत हितों की अपेक्षा सामूहिक हितों को अधिक महत्व दिया जाता है। परिवार में संसाधनों, आय तथा श्रम का सामूहिक उपयोग किया जाता है, जिससे आर्थिक सुरक्षा और सामाजिक स्थिरता बनी रहती है। बच्चों का पालन-पोषण, बुजुर्गों की देखभाल तथा घरेलू कार्यों का विभाजन सामूहिक रूप से किया जाता है। समाजशास्त्री ए. एम. शाह का मत है कि संयुक्त परिवार भारतीय समाज में सामाजिक सुरक्षा की एक प्रभावी व्यवस्था के रूप में कार्य करता रहा है (शाह, 1998)।

आर्थिक एवं सांस्कृतिक एकता संयुक्त परिवार व्यवस्था की एक अन्य महत्वपूर्ण विशेषता रही है। परिवार की आय, संपत्ति एवं संसाधनों पर सामूहिक अधिकार होता था तथा सभी सदस्य अपनी क्षमता के अनुसार परिवार के आर्थिक कार्यों में योगदान देते थे। इससे आर्थिक असमानता और असुरक्षा की संभावना कम हो जाती थी। संयुक्त परिवार में सांस्कृतिक परंपराओं, धार्मिक अनुष्ठानों तथा सामाजिक मूल्यों का संरक्षण भी सहज रूप से होता था। त्योहारों, संस्कारों और पारिवारिक आयोजनों में सभी सदस्यों की सहभागिता परिवार के सांस्कृतिक जीवन को सुदृढ़ बनाती थी। इस प्रकार संयुक्त परिवार भारतीय संस्कृति के संरक्षण और पीढ़ी-दर-पीढ़ी सांस्कृतिक हस्तांतरण का प्रमुख माध्यम रहा है।

संयुक्त परिवार व्यवस्था में लैंगिक एवं पीढ़ीगत भूमिकाएँ स्पष्ट रूप से निर्धारित होती थीं। पुरुष सामान्यतः बाहरी आर्थिक कार्यों एवं निर्णय प्रक्रिया से जुड़े रहते थे, जबकि महिलाओं की भूमिका घरेलू कार्यों, बच्चों के पालन-पोषण तथा परिवार की सांस्कृतिक परंपराओं के संरक्षण तक सीमित रहती थी। यद्यपि यह व्यवस्था महिलाओं को सामाजिक सुरक्षा प्रदान करती थी, फिर भी इसमें पितृसत्तात्मक नियंत्रण की प्रधानता स्पष्ट दिखाई देती थी। वहीं दूसरी ओर, संयुक्त परिवार में बुजुर्गों को विशेष सम्मान प्राप्त होता था। परिवार के वरिष्ठ सदस्य अनुभव, परंपरा एवं नैतिक मूल्यों के संरक्षक माने जाते थे तथा पारिवारिक निर्णयों में उनकी महत्वपूर्ण भूमिका होती थी। इस प्रकार संयुक्त परिवार पीढ़ियों के मध्य संबंधों को सुदृढ़ बनाने का माध्यम भी था। संयुक्त परिवार अनेक सामाजिक कार्यों का निर्वहन करता था। यह बच्चों के समाजीकरण, नैतिक शिक्षा, सामाजिक नियंत्रण तथा भावनात्मक सुरक्षा का प्रमुख केंद्र था। परिवार के माध्यम से व्यक्ति सामाजिक मूल्यों, परंपराओं, धार्मिक विश्वासों तथा व्यवहार के नियमों को सीखता था। संयुक्त परिवार आर्थिक संकट, बीमारी या अन्य कठिन परिस्थितियों में अपने सदस्यों को सुरक्षा प्रदान करता था। समाजशास्त्री टैल्कॉट पार्सन्स ने परिवार को समाजीकरण और सामाजिक स्थिरता का महत्वपूर्ण माध्यम माना है (पार्सन्स एवं बेल्स, 1955)। भारतीय संदर्भ में संयुक्त परिवार ने सामाजिक समरसता और सामूहिक जीवन की भावना को बनाए रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

भारतीय समाज में संयुक्त परिवार का महत्व केवल सामाजिक संस्था के रूप में ही नहीं, बल्कि सांस्कृतिक पहचान के रूप में भी रहा है। यह व्यवस्था भारतीय जीवन-दर्शन में निहित "वसुधैव कुटुम्बकम्" की भावना को प्रतिबिंबित करती है। संयुक्त परिवार ने सामाजिक सुरक्षा, आर्थिक सहयोग, सांस्कृतिक निरंतरता तथा भावनात्मक स्थिरता प्रदान करके भारतीय समाज को दीर्घकाल तक संगठित बनाए रखा। यद्यपि आधुनिकता, शहरीकरण एवं वैश्वीकरण के प्रभाव से संयुक्त परिवार व्यवस्था में परिवर्तन आए हैं, फिर भी भारतीय समाज में इसके सांस्कृतिक और भावनात्मक महत्व को आज भी पूरी तरह समाप्त नहीं माना जा सकता।

3. वैश्वीकरण, आधुनिकीकरण और सामाजिक परिवर्तन

वैश्वीकरण और आधुनिकीकरण समकालीन समाज में सामाजिक परिवर्तन की दो महत्वपूर्ण प्रक्रियाएँ हैं, जिन्होंने विश्व के विभिन्न समाजों की आर्थिक, सांस्कृतिक तथा सामाजिक संरचनाओं को व्यापक रूप से प्रभावित किया है। वैश्वीकरण जहाँ विश्व स्तर पर आर्थिक, सांस्कृतिक और तकनीकी संपर्कों के विस्तार को दर्शाता है, वहीं आधुनिकीकरण पारंपरिक समाज से आधुनिक समाज की ओर संक्रमण की प्रक्रिया को अभिव्यक्त करता है। भारतीय समाज में ये दोनों प्रक्रियाएँ परस्पर गहराई से जुड़ी हुई हैं। वैश्वीकरण ने आधुनिक जीवनशैली, तकनीकी विकास, संचार क्रांति और उपभोक्तावादी संस्कृति को बढ़ावा दिया, जबकि आधुनिकीकरण ने सामाजिक संस्थाओं, मान्यताओं और जीवन मूल्यों में परिवर्तन उत्पन्न किया। समाजशास्त्री योगेन्द्र सिंह के अनुसार भारतीय समाज में आधुनिकता का विकास परंपरा के पूर्ण विघटन के रूप में नहीं, बल्कि परंपरा और आधुनिकता के सहअस्तित्व के

रूप में हुआ है (सिंह, 1973)। इस प्रकार वैश्वीकरण और आधुनिकीकरण ने मिलकर भारतीय समाज को एक नए सामाजिक ढाँचे की ओर अग्रसर किया है।

औद्योगीकरण और शहरीकरण ने भारतीय समाज में सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया को तीव्र किया है। औद्योगिक विकास के कारण कृषि आधारित अर्थव्यवस्था का स्वरूप परिवर्तित हुआ तथा रोजगार के नए अवसर शहरों और औद्योगिक क्षेत्रों में केंद्रित होने लगे। परिणामस्वरूप ग्रामीण क्षेत्रों से बड़ी संख्या में लोग रोजगार की तलाश में नगरों और महानगरों की ओर प्रवास करने लगे। शहरीकरण ने पारंपरिक सामाजिक संबंधों और सामूहिक जीवन पद्धति को प्रभावित किया तथा व्यक्तिवादी जीवनशैली को बढ़ावा दिया। संयुक्त परिवारों की अपेक्षा छोटे एवं एकल परिवारों की संख्या बढ़ने लगी क्योंकि महानगरीय जीवन में सीमित आवास, व्यस्त जीवनशैली और आर्थिक दबाव संयुक्त परिवार व्यवस्था के लिए अनुकूल नहीं रहे। समाजशास्त्री एम. एन. श्रीनिवास ने भारतीय समाज में सामाजिक गतिशीलता और संरचनात्मक परिवर्तन को आधुनिकता और शहरीकरण से जोड़कर देखा है (श्रीनिवास, 1966)।

वैश्वीकरण के परिणामस्वरूप शिक्षा और रोजगार के क्षेत्र में भी व्यापक परिवर्तन देखने को मिले हैं। आधुनिक शिक्षा प्रणाली, तकनीकी संस्थानों तथा व्यावसायिक पाठ्यक्रमों के विस्तार ने युवाओं को नए प्रकार के रोजगार और करियर विकल्प प्रदान किए हैं। सूचना प्रौद्योगिकी, कॉर्पोरेट क्षेत्र, सेवा क्षेत्र तथा बहुराष्ट्रीय कंपनियों के विकास ने रोजगार की नई संभावनाएँ उत्पन्न की हैं। इससे व्यक्तियों की आर्थिक स्वतंत्रता बढ़ी है तथा पारंपरिक व्यवसायिक संरचनाओं में परिवर्तन आया है। शिक्षा ने सामाजिक चेतना और व्यक्तिगत आकांक्षाओं को भी विकसित किया है, जिसके परिणामस्वरूप युवा वर्ग पारंपरिक पारिवारिक नियंत्रण से अधिक स्वतंत्र जीवन की ओर आकर्षित हुआ है। इस परिवर्तन ने पारिवारिक संबंधों तथा सामाजिक मूल्यों को भी प्रभावित किया है।

महिलाओं की आर्थिक स्वतंत्रता वैश्वीकरण और आधुनिकीकरण का एक महत्वपूर्ण सामाजिक परिणाम है। आधुनिक शिक्षा और रोजगार के अवसरों ने महिलाओं को आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर बनाया है। पहले जहाँ महिलाओं की भूमिका मुख्यतः घरेलू कार्यों तक सीमित मानी जाती थी, वहीं अब वे शिक्षा, प्रशासन, राजनीति, उद्योग, सूचना प्रौद्योगिकी तथा सेवा क्षेत्र में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही हैं। आर्थिक स्वतंत्रता ने महिलाओं की सामाजिक स्थिति और निर्णय क्षमता को मजबूत किया है। विवाह, मातृत्व तथा पारिवारिक जीवन के प्रति महिलाओं की दृष्टि में भी परिवर्तन आया है। हालांकि इस परिवर्तन ने लैंगिक समानता को बढ़ावा दिया है, फिर भी कार्य और परिवार के मध्य संतुलन की समस्या, मानसिक तनाव तथा पारिवारिक संघर्ष जैसी चुनौतियाँ भी सामने आई हैं। समाजशास्त्री आंद्रे बेतेइ के अनुसार आधुनिकता ने भारतीय समाज में पारंपरिक लैंगिक भूमिकाओं को पुनर्परिभाषित किया है (बेतेइ, 2002)।

प्रवासन और महानगरीय जीवन ने भी भारतीय पारिवारिक एवं सामाजिक संरचना को गहराई से प्रभावित किया है। रोजगार, शिक्षा और बेहतर जीवन स्तर की खोज में लोग ग्रामीण क्षेत्रों से महानगरों की ओर निरंतर प्रवास कर रहे हैं। महानगरीय जीवन में प्रतिस्पर्धा, समयाभाव और व्यावसायिक व्यस्तता के कारण पारिवारिक संबंधों में निकटता कम होती जा रही है। एकल परिवारों की वृद्धि तथा पड़ोसी एवं समुदाय आधारित संबंधों की कमजोरी आधुनिक शहरी जीवन की प्रमुख विशेषताएँ बन चुकी हैं। प्रवासन के कारण पारंपरिक सामाजिक नियंत्रण और सांस्कृतिक निरंतरता भी प्रभावित हुई है। ग्रामीण समाज की सामूहिकता की तुलना में महानगरीय समाज अधिक व्यक्तिवादी और औपचारिक संबंधों पर आधारित दिखाई देता है।

मीडिया, इंटरनेट और डिजिटल संस्कृति ने वैश्वीकरण की प्रक्रिया को अत्यंत तीव्र बना दिया है। टेलीविजन, सोशल मीडिया, स्मार्टफोन तथा इंटरनेट ने विश्व को "वैश्विक गाँव" में परिवर्तित कर दिया है। आधुनिक संचार माध्यमों ने जीवनशैली, भाषा, पहनावे, खान-पान और सामाजिक व्यवहार पर गहरा प्रभाव डाला है। युवा पीढ़ी वैश्विक संस्कृति से अधिक प्रभावित हो रही है, जिसके कारण पारंपरिक सांस्कृतिक मान्यताओं और सामाजिक मूल्यों में परिवर्तन दिखाई देता है। डिजिटल संस्कृति ने सूचनाओं की पहुँच को आसान बनाया है, परंतु इसके कारण सामाजिक अलगाव, आभासी संबंधों की वृद्धि तथा पारिवारिक संवाद में कमी जैसी समस्याएँ भी उत्पन्न हुई हैं। वैश्वीकरण के प्रभाव से व्यक्तिवाद एवं उपभोक्तावादी संस्कृति का विकास भी तीव्र हुआ है। आधुनिक समाज में व्यक्ति की स्वतंत्रता, निजी आकांक्षाओं और व्यक्तिगत उपलब्धियों को अधिक महत्व दिया जाने लगा है। सामूहिकता और पारिवारिक उत्तरदायित्व की अपेक्षा व्यक्तिगत सफलता और भौतिक सुख-सुविधाओं को प्राथमिकता मिल रही है। विज्ञापन,

बाजारवाद और उपभोक्तावादी संस्कृति ने जीवन के मूल्यों को भी प्रभावित किया है। सामाजिक प्रतिष्ठा का आधार अब पारंपरिक नैतिक मूल्यों की अपेक्षा आर्थिक सफलता और उपभोग की क्षमता बनता जा रहा है।
इन सभी प्रक्रियाओं के परिणामस्वरूप भारतीय समाज के पारंपरिक मूल्यों में व्यापक परिवर्तन देखने को मिलते हैं। संयुक्त परिवार, सामूहिकता, पारस्परिक सहयोग, बड़ों के प्रति सम्मान तथा सांस्कृतिक अनुशासन जैसे मूल्य धीरे-धीरे कमजोर होते दिखाई दे रहे हैं। विवाह संस्था, लैंगिक भूमिकाएँ तथा पीढ़ीगत संबंधों की पारंपरिक अवधारणाएँ भी परिवर्तित हो रही हैं। यद्यपि आधुनिकता और वैश्वीकरण ने शिक्षा, रोजगार, लैंगिक समानता और व्यक्तिगत स्वतंत्रता को बढ़ावा दिया है, फिर भी इसके कारण सामाजिक विघटन, भावनात्मक दूरी तथा सांस्कृतिक असंतुलन जैसी चुनौतियाँ भी उत्पन्न हुई हैं। इस प्रकार वैश्वीकरण और आधुनिकीकरण भारतीय समाज में सामाजिक परिवर्तन की एक जटिल और बहुआयामी प्रक्रिया को अभिव्यक्त करते हैं।

4. संयुक्त परिवार से एकल परिवार की ओर संक्रमण

भारतीय समाज में परिवार सदैव सामाजिक संगठन की सबसे महत्वपूर्ण इकाई रहा है, किंतु आधुनिक समय में इसकी संरचना और स्वरूप में व्यापक परिवर्तन देखने को मिल रहे हैं। पारंपरिक संयुक्त परिवार व्यवस्था, जो सामूहिक जीवन, साझा उत्तरदायित्व और सांस्कृतिक निरंतरता पर आधारित थी, धीरे-धीरे एकल परिवार व्यवस्था में परिवर्तित होती जा रही है। यह परिवर्तन केवल पारिवारिक संरचना का परिवर्तन नहीं है, बल्कि सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक और मनोवैज्ञानिक स्तर पर हो रहे व्यापक सामाजिक परिवर्तन का द्योतक है। वैश्वीकरण, शहरीकरण, औद्योगीकरण, शिक्षा, महिलाओं की आर्थिक भागीदारी तथा व्यक्तिवादी जीवनशैली ने संयुक्त परिवार से एकल परिवार की ओर संक्रमण की प्रक्रिया को तीव्र किया है। समाजशास्त्री ए. एम. शाह के अनुसार भारतीय परिवार व्यवस्था स्थिर नहीं रही है, बल्कि सामाजिक-आर्थिक परिस्थितियों के अनुसार उसका स्वरूप निरंतर परिवर्तित होता रहा है (शाह, 1998)।
एकल परिवार से आशय ऐसे परिवार से है जिसमें सामान्यतः पति-पत्नी और उनके अविवाहित बच्चे सम्मिलित होते हैं। यह परिवार आकार में छोटा होता है तथा इसकी संरचना संयुक्त परिवार की अपेक्षा अधिक स्वतंत्र और व्यक्तिगत होती है। एकल परिवार की प्रमुख विशेषताओं में सीमित सदस्य संख्या, आर्थिक स्वतंत्रता, निजी निर्णय क्षमता तथा व्यक्तिगत जीवनशैली को महत्व देना शामिल है। आधुनिक शहरी समाज में यह परिवार व्यवस्था अधिक प्रचलित होती जा रही है क्योंकि यह बदलती आर्थिक और व्यावसायिक परिस्थितियों के अनुकूल मानी जाती है। समाजशास्त्री टैल्कॉट पार्सन्स ने औद्योगिक समाज के संदर्भ में एकल परिवार को अधिक कार्यात्मक माना है, क्योंकि यह गतिशीलता, व्यावसायिक स्वतंत्रता और आधुनिक आर्थिक आवश्यकताओं के अनुरूप होता है (पार्सन्स एवं बेल्स, 1955)।
संयुक्त परिवारों के विघटन के पीछे अनेक सामाजिक और आर्थिक कारण उत्तरदायी हैं। औद्योगीकरण और शहरीकरण के कारण रोजगार के अवसर मुख्यतः शहरों में केंद्रित हो गए, जिसके परिणामस्वरूप युवाओं का ग्रामीण क्षेत्रों से महानगरों की ओर प्रवासन बढ़ा। रोजगार और शिक्षा के लिए स्थान परिवर्तन ने संयुक्त परिवार की पारंपरिक संरचना को कमजोर किया। आधुनिक शिक्षा और आर्थिक स्वतंत्रता ने व्यक्तियों में आत्मनिर्भरता और व्यक्तिगत निर्णय क्षमता को बढ़ावा दिया है। इसके अतिरिक्त, पश्चिमी संस्कृति और व्यक्तिवादी जीवनशैली के प्रभाव ने सामूहिक जीवन की अपेक्षा व्यक्तिगत स्वतंत्रता को अधिक महत्व दिया है। समाजशास्त्री एम. एन. श्रीनिवास ने भारतीय समाज में आधुनिकता और सामाजिक गतिशीलता को पारिवारिक परिवर्तन का महत्वपूर्ण कारण माना है (श्रीनिवास, 1966)।
आर्थिक दबाव और सीमित आवास की समस्या भी संयुक्त परिवार से एकल परिवार की ओर संक्रमण का एक प्रमुख कारण है। महानगरों में बढ़ती जनसंख्या, महँगी जीवनशैली और सीमित आवासीय सुविधाओं के कारण बड़े परिवारों का निर्वाह कठिन होता जा रहा है। मध्यमवर्गीय परिवारों के लिए सीमित आय में संयुक्त परिवार की आवश्यकताओं को पूरा करना चुनौतीपूर्ण हो गया है। परिणामस्वरूप छोटे परिवार आर्थिक रूप से अधिक सुविधाजनक माने जाने लगे हैं। एकल परिवार व्यवस्था में आर्थिक निर्णय अपेक्षाकृत सरल होते हैं तथा खर्चों पर नियंत्रण भी अधिक प्रभावी माना जाता है। आधुनिक आर्थिक व्यवस्था में प्रतिस्पर्धा और उपभोक्तावाद ने भी व्यक्तियों को अपने सीमित संसाधनों के अनुसार छोटे परिवार को प्राथमिकता देने के लिए प्रेरित किया है।

पीढ़ियों के बीच वैचारिक संघर्ष भी संयुक्त परिवारों के विघटन का एक महत्वपूर्ण कारण है। आधुनिक शिक्षा, तकनीकी विकास और वैश्विक संस्कृति के प्रभाव से युवा पीढ़ी के विचार, जीवनशैली और आकांक्षाएँ पारंपरिक पीढ़ी से भिन्न होती जा रही हैं। जहाँ पुरानी पीढ़ी पारंपरिक मूल्यों, अनुशासन और सामूहिक निर्णयों को महत्व देती है, वहीं नई पीढ़ी व्यक्तिगत स्वतंत्रता, निजी निर्णय और आधुनिक जीवनशैली को प्राथमिकता देती है। इस वैचारिक अंतर के कारण परिवारों में तनाव और संघर्ष की स्थिति उत्पन्न होती है। कई बार युवा दंपत्ति स्वतंत्र जीवन जीने की इच्छा से संयुक्त परिवार से अलग होकर एकल परिवार की स्थापना कर लेते हैं। समाजशास्त्री योगेन्द्र सिंह के अनुसार भारतीय समाज में आधुनिकता और परंपरा के मध्य उत्पन्न द्वंद्व सामाजिक संस्थाओं में परिवर्तन का प्रमुख कारण है (सिंह, 1973)।

वैवाहिक संबंधों में परिवर्तन ने भी परिवार संरचना को प्रभावित किया है। आधुनिक समाज में विवाह को केवल सामाजिक संस्था के रूप में नहीं, बल्कि व्यक्तिगत संबंध और भावनात्मक साझेदारी के रूप में देखा जाने लगा है। पति-पत्नी के संबंधों में समानता, व्यक्तिगत स्वतंत्रता और पारस्परिक समझ को अधिक महत्व मिलने लगा है। महिलाओं की शिक्षा और आर्थिक आत्मनिर्भरता ने पारंपरिक पारिवारिक भूमिकाओं को चुनौती दी है। अब महिलाएँ केवल घरेलू भूमिकाओं तक सीमित नहीं हैं, बल्कि वे आर्थिक निर्णयों और सामाजिक गतिविधियों में भी सक्रिय भागीदारी निभा रही हैं। इससे पारिवारिक संरचना और निर्णय प्रक्रिया में परिवर्तन आया है।

निजी स्वतंत्रता और व्यक्तिगत जीवनशैली की बढ़ती प्रवृत्ति ने एकल परिवार व्यवस्था को और अधिक प्रोत्साहित किया है। आधुनिक समाज में व्यक्ति अपने निजी जीवन, करियर, समय और संबंधों पर अधिक नियंत्रण चाहता है। संयुक्त परिवार में पारिवारिक अनुशासन और सामूहिक निर्णयों के कारण व्यक्तिगत स्वतंत्रता सीमित महसूस हो सकती है, जबकि एकल परिवार व्यक्ति को अधिक स्वायत्तता प्रदान करता है। आधुनिक युवा वर्ग अपने जीवन को अपनी इच्छाओं और आकांक्षाओं के अनुसार संचालित करना चाहता है, जिसके कारण एकल परिवारों की संख्या निरंतर बढ़ रही है। ग्रामीण एवं शहरी परिवारों की तुलनात्मक स्थिति भी इस परिवर्तन को स्पष्ट करती है। ग्रामीण क्षेत्रों में अभी भी संयुक्त परिवार व्यवस्था का प्रभाव अपेक्षाकृत अधिक दिखाई देता है क्योंकि वहाँ कृषि आधारित अर्थव्यवस्था, सामुदायिक जीवन और पारंपरिक मूल्य अधिक मजबूत हैं। इसके विपरीत शहरी क्षेत्रों में व्यस्त जीवनशैली, सीमित सामाजिक संबंध और आर्थिक प्रतिस्पर्धा के कारण एकल परिवारों का प्रचलन तेजी से बढ़ा है। महानगरीय समाज में सामाजिक संबंध अधिक औपचारिक और व्यक्तिवादी होते जा रहे हैं, जिससे संयुक्त परिवार व्यवस्था कमजोर पड़ती जा रही है। इन सभी परिवर्तनों के परिणामस्वरूप परिवार संरचना के प्रति सामाजिक मानसिकता में भी बदलाव आया है। पहले संयुक्त परिवार को सामाजिक आदर्श माना जाता था, जबकि आज एकल परिवार आधुनिकता, सुविधा और स्वतंत्रता का प्रतीक बनता जा रहा है। हालांकि एकल परिवार व्यवस्था ने व्यक्तिगत स्वतंत्रता, आर्थिक नियंत्रण और व्यावसायिक गतिशीलता को बढ़ावा दिया है, फिर भी इसके कारण सामाजिक अलगाव, बुजुर्गों की उपेक्षा तथा भावनात्मक दूरी जैसी समस्याएँ भी सामने आई हैं। इस प्रकार संयुक्त परिवार से एकल परिवार की ओर संक्रमण भारतीय समाज में हो रहे व्यापक सामाजिक परिवर्तन और बदलती जीवनशैली का महत्वपूर्ण संकेतक है।

5. बदलती पारिवारिक संरचना के सामाजिक एवं मनोवैज्ञानिक प्रभाव

भारतीय समाज में पारिवारिक संरचना में हो रहे परिवर्तन केवल सामाजिक संगठन तक सीमित नहीं हैं, बल्कि उन्होंने व्यक्तियों के मनोवैज्ञानिक, सांस्कृतिक तथा भावनात्मक जीवन को भी गहराई से प्रभावित किया है। संयुक्त परिवार से एकल परिवार की ओर संक्रमण ने पारिवारिक संबंधों, सामाजिक मूल्यों, भावनात्मक सुरक्षा तथा सामाजिक नियंत्रण की पारंपरिक व्यवस्था को परिवर्तित कर दिया है। आधुनिक जीवनशैली, शहरीकरण, वैश्वीकरण और व्यक्तिवादी संस्कृति के प्रभाव ने पारिवारिक संरचना को अधिक लचीला और स्वतंत्र बनाया है, किंतु इसके साथ ही कई सामाजिक एवं मनोवैज्ञानिक चुनौतियाँ भी उत्पन्न हुई हैं। समाजशास्त्री उलरिख बेक के अनुसार आधुनिक समाज में व्यक्तिवाद और निजी स्वतंत्रता के बढ़ते प्रभाव ने पारंपरिक सामाजिक संबंधों को कमजोर किया है, जिसके कारण व्यक्ति भावनात्मक असुरक्षा और सामाजिक अलगाव का अनुभव करने लगा है (बेक, 1992)।

बदलती पारिवारिक संरचना का सबसे अधिक प्रभाव बुजुर्गों की स्थिति पर पड़ा है। संयुक्त परिवार व्यवस्था में बुजुर्गों को सम्मान, सुरक्षा और सामाजिक महत्व प्राप्त होता था। वे परिवार के मार्गदर्शक, निर्णयकर्ता और सांस्कृतिक मूल्यों

के संरक्षक माने जाते थे। किंतु एकल परिवार व्यवस्था के बढ़ते प्रचलन के कारण अनेक बुजुर्ग अकेलेपन, उपेक्षा और असुरक्षा का सामना कर रहे हैं। रोजगार और शिक्षा के लिए युवा पीढ़ी के महानगरों या विदेशों की ओर प्रवासन के कारण वृद्ध माता-पिता अक्सर अकेले रह जाते हैं। इससे उनमें मानसिक तनाव, अवसाद तथा असहायता की भावना बढ़ती है। वृद्धाश्रमों की बढ़ती संख्या भी इस सामाजिक परिवर्तन का संकेत है। समाजशास्त्री ए. एम. शाह ने भारतीय परिवार व्यवस्था में हो रहे परिवर्तनों को बुजुर्गों की सामाजिक स्थिति में आए बदलाव से जोड़कर देखा है (शाह, 1998)।

बच्चों के समाजीकरण की प्रक्रिया भी बदलती पारिवारिक संरचना से प्रभावित हुई है। संयुक्त परिवार में बच्चों को अनेक पीढ़ियों के साथ रहने का अवसर मिलता था, जिससे उनमें सहयोग, सामूहिकता, अनुशासन और सांस्कृतिक मूल्यों का विकास होता था। दादा-दादी तथा अन्य वरिष्ठ सदस्य बच्चों को नैतिक शिक्षा और सामाजिक व्यवहार का प्रशिक्षण देते थे। किंतु एकल परिवारों में बच्चों का सामाजिक परिवेश सीमित हो गया है। माता-पिता की व्यावसायिक व्यस्तता तथा डिजिटल माध्यमों पर बढ़ती निर्भरता के कारण बच्चों के समाजीकरण की प्रक्रिया अधिक औपचारिक और तकनीक-केंद्रित होती जा रही है। इससे बच्चों में सामाजिक अलगाव, आक्रामकता तथा भावनात्मक असंतुलन जैसी समस्याएँ भी देखने को मिलती हैं।

पति-पत्नी संबंधों में भी आधुनिकता और बदलती पारिवारिक संरचना के कारण महत्वपूर्ण परिवर्तन आए हैं। पारंपरिक संयुक्त परिवार व्यवस्था में वैवाहिक संबंध सामाजिक उत्तरदायित्व और पारिवारिक अनुशासन से नियंत्रित होते थे, जबकि आधुनिक एकल परिवार व्यवस्था में पति-पत्नी संबंध अधिक व्यक्तिगत, भावनात्मक और समानतापरक होते जा रहे हैं। महिलाओं की शिक्षा और आर्थिक आत्मनिर्भरता ने वैवाहिक संबंधों में समानता और स्वतंत्रता की भावना को मजबूत किया है। पति-पत्नी अब पारिवारिक निर्णयों में समान भागीदारी निभाने लगे हैं। हालांकि यह परिवर्तन लैंगिक समानता की दृष्टि से सकारात्मक है, फिर भी करियर, समयाभाव और व्यक्तिगत आकांक्षाओं के कारण वैवाहिक तनाव तथा तलाक की घटनाओं में वृद्धि देखी जा रही है। समाजशास्त्री एंथनी गिडेन्स ने आधुनिक समाज में विवाह को "भावनात्मक साझेदारी" के रूप में परिभाषित किया है, जहाँ संबंध पारंपरिक नियंत्रण की अपेक्षा व्यक्तिगत संतुष्टि पर आधारित होते हैं (गिडेन्स, 1992)।

आधुनिक पारिवारिक संरचना में भावनात्मक दूरी और अकेलेपन की समस्या भी तेजी से बढ़ रही है। संयुक्त परिवारों में सामूहिक जीवन, पारिवारिक संवाद और सामाजिक सहभागिता के कारण व्यक्ति को भावनात्मक सुरक्षा प्राप्त होती थी। इसके विपरीत एकल परिवारों में सीमित सामाजिक संपर्क, व्यस्त जीवनशैली तथा डिजिटल संचार पर निर्भरता के कारण व्यक्ति सामाजिक अलगाव का अनुभव करने लगा है। विशेष रूप से महानगरीय जीवन में पड़ोसी संबंधों और सामुदायिक सहभागिता की कमी ने अकेलेपन की समस्या को और अधिक गंभीर बना दिया है। सोशल मीडिया और आभासी संबंधों की वृद्धि ने वास्तविक पारिवारिक संवाद को कमजोर किया है, जिससे भावनात्मक निकटता में कमी आई है। मानसिक तनाव और पारिवारिक विघटन आधुनिक पारिवारिक परिवर्तन के अन्य महत्वपूर्ण परिणाम हैं। आर्थिक प्रतिस्पर्धा, रोजगार का दबाव, समयाभाव और व्यक्तिगत आकांक्षाओं के कारण परिवार के सदस्यों में मानसिक तनाव बढ़ रहा है। संयुक्त परिवारों में जहाँ समस्याओं और जिम्मेदारियों का सामूहिक समाधान संभव था, वहीं एकल परिवारों में व्यक्ति को अधिकांश समस्याओं का सामना अकेले करना पड़ता है। इससे अवसाद, चिंता, वैवाहिक तनाव तथा पारिवारिक विघटन जैसी समस्याएँ उत्पन्न होती हैं। तलाक, अलगाव तथा पारिवारिक संघर्ष की बढ़ती घटनाएँ आधुनिक पारिवारिक संरचना के मनोवैज्ञानिक प्रभावों को स्पष्ट करती हैं।

महिलाओं की बदलती भूमिका आधुनिक पारिवारिक परिवर्तन का एक महत्वपूर्ण पक्ष है। वैश्वीकरण और शिक्षा के प्रसार ने महिलाओं को आर्थिक और सामाजिक रूप से अधिक सशक्त बनाया है। अब महिलाएँ केवल घरेलू कार्यों तक सीमित नहीं हैं, बल्कि वे शिक्षा, प्रशासन, व्यवसाय, राजनीति तथा तकनीकी क्षेत्रों में सक्रिय भूमिका निभा रही हैं। इससे महिलाओं की सामाजिक स्थिति और निर्णय क्षमता में वृद्धि हुई है। हालांकि कार्यस्थल और परिवार दोनों की जिम्मेदारियों के बीच संतुलन बनाए रखना महिलाओं के लिए चुनौतीपूर्ण बन गया है। "दोहरे दायित्व" की यह स्थिति कई बार मानसिक तनाव और पारिवारिक संघर्ष को जन्म देती है। बदलती पारिवारिक संरचना का प्रभाव पारिवारिक मूल्यों और सांस्कृतिक निरंतरता पर भी स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। संयुक्त परिवार व्यवस्था भारतीय संस्कृति, परंपराओं और सामाजिक मूल्यों के संरक्षण का प्रमुख माध्यम थी। बड़ों का सम्मान, सामूहिकता, त्याग, सहयोग और पारिवारिक अनुशासन जैसे मूल्य संयुक्त परिवारों में सहज रूप से विकसित होते थे। किंतु आधुनिक

व्यक्तिवादी संस्कृति और उपभोक्तावाद के प्रभाव से ये पारंपरिक मूल्य धीरे-धीरे कमजोर पड़ते दिखाई दे रहे हैं। इसके बावजूद आधुनिक पारिवारिक व्यवस्था ने व्यक्तिगत स्वतंत्रता, लैंगिक समानता, शिक्षा और आत्मनिर्भरता को बढ़ावा दिया है। इस प्रकार बदलती पारिवारिक संरचना के सकारात्मक और नकारात्मक दोनों परिणाम सामने आते हैं। एक ओर आधुनिक परिवार व्यवस्था ने व्यक्तिगत स्वतंत्रता, महिलाओं के सशक्तिकरण और आर्थिक गतिशीलता को प्रोत्साहित किया है, वहीं दूसरी ओर सामाजिक अलगाव, भावनात्मक दूरी, मानसिक तनाव तथा पारिवारिक विघटन जैसी समस्याएँ भी उत्पन्न की हैं। इसलिए आवश्यकता इस बात की है कि आधुनिकता और पारंपरिक पारिवारिक मूल्यों के बीच संतुलन स्थापित किया जाए, ताकि सामाजिक विकास के साथ-साथ भावनात्मक और सांस्कृतिक स्थिरता भी बनी रह सके।

6. निष्कर्ष

भारतीय समाज में वैश्वीकरण, आधुनिकीकरण, शहरीकरण तथा औद्योगीकरण की प्रक्रियाओं ने पारिवारिक संरचना में व्यापक परिवर्तन उत्पन्न किए हैं। प्रस्तुत अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि पारंपरिक संयुक्त परिवार व्यवस्था, जो भारतीय समाज की सामाजिक एवं सांस्कृतिक पहचान का प्रमुख आधार रही है, वर्तमान समय में निरंतर परिवर्तन के दौर से गुजर रही है। आर्थिक विकास, शिक्षा का प्रसार, रोजगार के नए अवसर, महिलाओं की आर्थिक स्वतंत्रता तथा व्यक्तिवादी जीवनशैली ने एकल परिवार व्यवस्था को बढ़ावा दिया है। परिणामस्वरूप भारतीय परिवार संस्था का स्वरूप अधिक लचीला, आधुनिक और व्यक्तिगत आवश्यकताओं के अनुरूप होता जा रहा है। समाजशास्त्री योगेन्द्र सिंह के अनुसार भारतीय समाज में आधुनिकता का प्रभाव परंपरागत सामाजिक संस्थाओं के पुनर्गठन के रूप में दिखाई देता है, न कि उनके पूर्ण विघटन के रूप में (सिंह, 1973)।

अध्ययन के प्रमुख निष्कर्ष यह दर्शाते हैं कि वैश्वीकरण ने परिवार संस्था की पारंपरिक संरचना, भूमिकाओं और संबंधों को गहराई से प्रभावित किया है। संयुक्त परिवार व्यवस्था, जो सामूहिकता, सहयोग और सांस्कृतिक निरंतरता पर आधारित थी, अब धीरे-धीरे सीमित होती जा रही है। इसके स्थान पर एकल परिवार व्यवस्था का विस्तार हो रहा है, जो व्यक्तिगत स्वतंत्रता, आर्थिक सुविधा और व्यावसायिक गतिशीलता के अधिक अनुकूल मानी जाती है। हालांकि संयुक्त परिवारों के विघटन के पीछे केवल आर्थिक कारण ही नहीं, बल्कि सामाजिक और सांस्कृतिक परिवर्तन भी महत्वपूर्ण हैं। आधुनिक शिक्षा, डिजिटल संस्कृति, पश्चिमी जीवनशैली और उपभोक्तावाद ने पारंपरिक पारिवारिक मूल्यों को चुनौती दी है।

संयुक्त एवं एकल परिवार की तुलनात्मक समीक्षा से यह स्पष्ट होता है कि दोनों व्यवस्थाओं के अपने-अपने लाभ और सीमाएँ हैं। संयुक्त परिवार व्यवस्था सामाजिक सुरक्षा, भावनात्मक सहयोग, सांस्कृतिक संरक्षण तथा बच्चों और बुजुर्गों की देखभाल की दृष्टि से अधिक प्रभावी रही है। इसके विपरीत एकल परिवार व्यक्तिगत स्वतंत्रता, आर्थिक नियंत्रण, निजी निर्णय क्षमता और आधुनिक जीवनशैली के अनुकूल माना जाता है। संयुक्त परिवारों में जहाँ सामूहिकता और पारस्परिक सहयोग की भावना प्रबल होती है, वहीं एकल परिवारों में व्यक्तिवाद और निजी जीवन को अधिक महत्व दिया जाता है। इसलिए यह कहना उचित नहीं होगा कि एक व्यवस्था पूर्णतः श्रेष्ठ और दूसरी पूर्णतः अनुपयुक्त है; बल्कि सामाजिक परिस्थितियों और जीवनशैली के अनुसार दोनों व्यवस्थाओं की उपयोगिता अलग-अलग हो सकती है।

भारतीय पारिवारिक मूल्यों की वर्तमान स्थिति भी परिवर्तनशील दिखाई देती है। पारंपरिक मूल्य—जैसे बड़ों का सम्मान, पारिवारिक अनुशासन, त्याग, सहयोग और सामूहिकता—आधुनिक जीवनशैली और उपभोक्तावादी संस्कृति के प्रभाव से कमजोर पड़ते दिखाई दे रहे हैं। इसके बावजूद भारतीय समाज में परिवार संस्था का महत्व पूरी तरह समाप्त नहीं हुआ है। आज भी भावनात्मक सुरक्षा, सामाजिक पहचान और सांस्कृतिक निरंतरता के लिए परिवार को अत्यंत महत्वपूर्ण माना जाता है। आधुनिक युवा पीढ़ी व्यक्तिगत स्वतंत्रता को महत्व देती है, किंतु संकट और असुरक्षा की परिस्थितियों में परिवार की आवश्यकता और प्रासंगिकता पुनः स्पष्ट हो जाती है।

वर्तमान परिस्थितियों में संतुलित पारिवारिक व्यवस्था की आवश्यकता अत्यंत महत्वपूर्ण है। आधुनिकता और परंपरा के मध्य संतुलन स्थापित किए बिना स्वस्थ सामाजिक विकास संभव नहीं है। आवश्यकता इस बात की है कि आधुनिक परिवार व्यवस्था में व्यक्तिगत स्वतंत्रता और लैंगिक समानता के साथ-साथ पारिवारिक सहयोग, भावनात्मक निकटता और सांस्कृतिक मूल्यों को भी बनाए रखा जाए। बच्चों के समाजीकरण, बुजुर्गों की देखभाल तथा पारिवारिक संवाद

को मजबूत करने के लिए परिवार के सदस्यों के बीच संवेदनशीलता और सहभागिता आवश्यक है। भविष्य की संभावनाओं की दृष्टि से यह कहा जा सकता है कि भारतीय परिवार संस्था पूर्णतः समाप्त होने के बजाय नए सामाजिक संदर्भों के अनुसार स्वयं को पुनर्गठित कर रही है। आने वाले समय में "संशोधित संयुक्त परिवार" या "सहयोगात्मक एकल परिवार" जैसी मिश्रित पारिवारिक व्यवस्थाएँ अधिक विकसित हो सकती हैं, जिनमें आधुनिक जीवनशैली और पारंपरिक मूल्यों का समन्वय दिखाई देगा। सरकार और समाज को ऐसी नीतियों को प्रोत्साहित करना चाहिए जो पारिवारिक मूल्यों, बुजुर्गों की सुरक्षा, महिलाओं के सशक्तिकरण तथा बच्चों के स्वस्थ समाजीकरण को मजबूत करें। इस प्रकार वैश्वीकरण के दौर में भारतीय परिवार संस्था अनेक चुनौतियों का सामना करते हुए भी अपनी सांस्कृतिक और सामाजिक प्रासंगिकता को बनाए रखने का प्रयास कर रही है।

सन्दर्भ

1. बेतेइ, आंद्रे. (2002). *भारतीय समाज में असमानता और सामाजिक परिवर्तन*। नई दिल्ली: ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।
2. देसाई, ए. आर. (2005). *भारतीय ग्रामीण समाजशास्त्र*। मुंबई: पॉपुलर प्रकाशन।
3. दुबे, एस. सी. (1990). *भारतीय समाज*। नई दिल्ली: नेशनल बुक ट्रस्ट।
4. गिडेन्स, एंथनी. (1990). *द कॉन्सीक्वेन्सेज ऑफ मॉडर्निटी*। स्टैनफोर्ड: स्टैनफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।
5. गिडेन्स, एंथनी. (1992). *द ट्रांसफॉर्मेशन ऑफ इंटीमेसी: सेक्सुएलिटी, लव एंड एरोटिसिज़्म इन मॉडर्न सोसाइटीज़*। कैम्ब्रिज: पॉलिटी प्रेस।
6. गोरे, एम. एस. (1968). *अर्बनाइजेशन एंड फैमिली चेंज*। मुंबई: पॉपुलर प्रकाशन।
7. कर्वे, इरावती. (1961). *किनशिप ऑर्गेनाइज़ेशन इन इंडिया*। बॉम्बे: एशिया पब्लिशिंग हाउस।
8. कपूर, प्रमिला. (1974). *लव मैरिज एंड सेक्स*। नई दिल्ली: विकास पब्लिशिंग हाउस।
9. मुखर्जी, राधाकमल. (1975). *भारतीय संस्कृति और समाज*। नई दिल्ली: राजपाल एंड संस।
10. पार्सन्स, टैल्कॉट, एवं बेल्स, रॉबर्ट एफ. (1955). *फैमिली, सोशलाइज़ेशन एंड इंटरेक्शन प्रोसेस*। ग्लेनको: फ्री प्रेस।
11. बेक, उलरिख. (1992). *रिस्क सोसाइटी: टुवर्ड्स अ न्यू मॉडर्निटी*। लंदन: सेज पब्लिकेशन्स।
12. रॉबर्टसन, रोलैंड. (1992). *ग्लोबलाइज़ेशन: सोशल थ्योरी एंड ग्लोबल कल्चर*। लंदन: सेज पब्लिकेशन्स।
13. शर्मा, के. एल. (2013). *भारतीय सामाजिक संरचना एवं परिवर्तन*। जयपुर: रावत पब्लिकेशन्स।
14. शाह, ए. एम. (1998). *द फैमिली इन इंडिया: क्रिटिकल एसेज़*। नई दिल्ली: ओरिएंट लॉन्गमैन।
15. श्रीनिवास, एम. एन. (1966). *सोशल चेंज इन मॉडर्न इंडिया*। बर्कले: यूनिवर्सिटी ऑफ कैलिफोर्निया प्रेस।
16. सिंह, योगेन्द्र. (1973). *मॉडर्नाइज़ेशन ऑफ इंडियन ट्रेडिशन: ए सिस्टेमेटिक स्टडी ऑफ सोशल चेंज*। नई दिल्ली: थॉमसन प्रेस।
17. सिंह, योगेन्द्र. (2000). *भारतीय समाज : परंपरा एवं परिवर्तन*। नई दिल्ली: रावत पब्लिकेशन्स।
18. ऊबेरॉय, पत्रिशिया. (2006). *फ्रीडम एंड डेस्टिनी: जेंडर, फैमिली एंड पॉपुलर कल्चर इन इंडिया*। नई दिल्ली: ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।
19. झा, माखनलाल. (2007). *वैश्वीकरण और भारतीय समाज*। नई दिल्ली: क्लासिकल पब्लिशिंग कंपनी।